Vol. 11, Issue-1 (January 2022) pp.160-169 Sangeet Galaxy e-Journal [ISSN: 2319-9695]

UGC-CARE enlisted & Indexed in EBSCO International Database of Journals

सराईकेला छउ नृत्य में आहार्याभिनय (अमूर्त सांस्कृतिक विरासत)

अपराजिता पटेल(शोध छात्रा)
डॉ० विधि नागर(शोध निर्देशिका)
नृत्य विभाग,संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
Email: aparajitapatel08@gmail.com

सारांश

भारतीय इतिहास प्राचीन काल से ही अपनी समृद्ध संस्कृति कला और साहित्य की अनेक गौरवशाली परंपराओं को समेटे चला आ रहा है, जिसमें अनेक धार्मिक लोक-कलाएं, परंपराएं, नृत्य शैलियां एवं नाटकों ने जन्म लिया. इनमें शास्त्रीय नृत्य शैलियां- ओडीशी, मणिपुरी, भरतनाट्यम, कथक इत्यादि, लोक नृत्य शैलियां- गरबा, कालबेलिया, बिहू, गिद्धा इत्यादि, लोकनाट्य शैलियां- यक्षगान, नौटंकी, रामलीला इत्यादि प्रमुख हैं. छउ भी इन्हीं नृत्य शैलियों में से एक है, जो अपने सामरिक कला अर्थात मार्शल-आर्ट, फरिखंडा-कला तथा युद्ध-नृत्य कला जैसे: शिकारी, अस्त्र-द्वंद, तलवार और ढाल का खेल आदि के अद्भुत शारीरिक संचालनों व हस्त-पाद की स्थितियों के सुंदर समन्वय तथा इन्हीं स्वरूपों के अनुसार लकड़ी, बास, मिट्टी, प्लास्टिक आदि से बने विचित्र किंतु आकर्षक मुखौटों व चटकीले-चमकदार वस्त्राभूषणों के कारण प्राचीन समय से ही अपनी इस नृत्य-कला की संस्कृति को संजोए हुए चला आ रहा है और यह नृत्य न केवल भारत में अपितु विश्व स्तर पर अपनी पहचान बना चुका है. सराईकेला छउ एक प्रसिद्ध लोक नृत्य शैली है किन्तु इसमें शास्त्रीय तत्व भी विद्यमान है. इसके वस्त्र-आभूषण, मुकुट, मुखौटे आदि की निर्माण प्रक्रिया भरत कृत नाट्यशास्त्रीय आहार्याभिनय के तत्त्व संजीव, अंग रचना, अलंकार व पुस्त आदि से भी साम्यता रखती है. प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य सराईकेला छउ नृत्य के आहार्य अभिनय में नाट्यशास्त्रीय आहार्याभिनय के तत्त्वों को स्थापित करना है.

मुख्य बिंदुः- छउ, सराईकेला छउ, मुखौटा, युद्ध-नृत्य, फरिखंडा-कला, आहार्य अभिनय, अमूर्त सांस्कृतिक विरासत, यूनेस्को.

प्रस्तावनाः- छउ नृत्य को उसके ऐतिहासिक परिदृश्य, उद्भव एवं विकास के आधार पर मुख्यतः दो कालों में बांटा जा सकता है,

1.प्रथम काल- सन् 1930 से पहले का समय: (फरिखंडा-कला का आरंभिक ढांचागत काल)

इसे वर्तमान छउ नृत्य (के उद्भव) का प्रारंम्भिक काल अर्थात्, फरिखंडा-कला के उद्भव एवं विकास का काल भी कहते है. क्योंकि छउ, छावनी से जन्मा नृत्य है अतः पूर्व काल में सन् 1857 से पहले एवं बाद में सरायकेला राज्य में सैनिक छावनियों के साथ ही साथ अखाड़ों का भी निर्माण हुआ.[1] इन अखाड़ों में फरिखंडा कला की शिक्षा दी

[1] भारतीय छउ नृत्य(इतिहास, संस्कृति और कला, भाग-2), बदरी प्रसाद, पृ.सं. 366

जाती थी. पाईक योद्धा तलवार एवं ढाल के साथ जिन शारीरिक विन्यासों का अभ्यास करते थे, शान्ति काल में अर्थात् युद्ध न होने पर उन्हीं युद्ध विधाओं का प्रयोग मनोरंजन की दृष्टि से करने लगे थे. जो बाद में फरिखंडा कला के नाम से प्रचलित हुआ. प्रदर्शन के दौरान यदि किसी योद्धा को लज्जा आती थी तो वह अपने मुख को पत्तों से या अन्य वस्तुओं से ढक लेता था. जिससे उसका वास्तविक स्वरुप छिप जाता था और वह बेझिझक कला का प्रदर्शन करता था. कुछ समय पश्चात आचार्यों ने नवीन प्रयोग कर इस युद्ध नृत्य विधा में (जो कि तांडव नृत्य का स्वरुप था) पद विन्यासों एवं हस्त मुद्राओं को जोडकर उसे कलात्मक रुप प्रदान किया तथा पत्तों एवं बांस की टोकरी के मुखौटे की जगह पर मिट्टी के मुखौटे का प्रयोग करने लगे. इस समयान्तराल तक यह नृत्य लोगों के मनोरंजन का एक सशक्त माध्यम बन चुका था और लोग सहर्ष अपनी प्रतिभागिता भी दिखाने लगे थे.

(ग्राफ-1)[2]

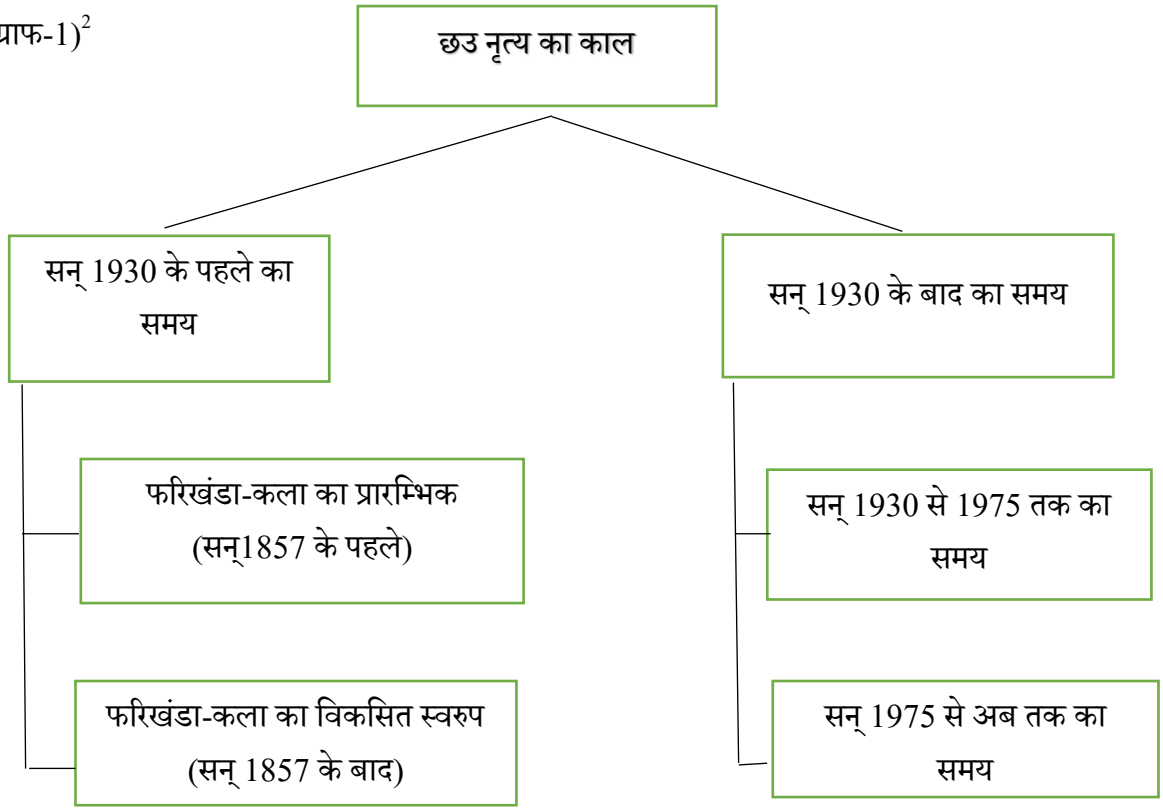

द्वितीय काल:- सन् 1930 के बाद का समय:

सन् 1930 से पहले छउ नृत्य में नवीन प्रयोग तो हुए थे और इसके कलाकार तलवार एवं ढाल से आश्चर्य कर देने वाले करतबों एवं अंग संचालनों का प्रयोग भी करते थे, जो लोगों को अचंभित कर देता था परंतु यह सब एक निश्चित कलात्मक नियम से परे था, जो सन् 1930 के बाद छउ नृत्य को प्राप्त हुआ. सरायकेला राजघराने से राजाश्रय प्राप्त होने पर सराईकेला छउ में शास्त्रीयता के कलात्मक तत्त्वों का समावेश होने लगा.[3] इसके वस्त्र,

[2] भारतीय छउ नृत्य(इतिहास, संस्कृति और कला, भाग-2), बदरी प्रसाद, पृ. सं.353

[3] झारखंड की सांस्कृतिक धरोहर सरायकेला छऊ, योगेन्द्र प्रसाद, पृ.सं. 18

अलंकार, वेशभूषा एवं साज-सज्जा में शास्त्रीयता के तत्त्व जुड़ने लगे. छउ नृत्य का ढांचा अर्थात उसके अंग, पद-विन्यास, हस्ताभिय इत्यादि में भी कथावस्तु के अनुसार नवीन प्रयोग हुए एवं मिट्टी के भारी मुखौटे की जगह हल्की एवं सुविधाजनक मुखौटे बनने लगे. इस दौरान छउ नृत्य के कलाकार सिर्फ भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे थे. सन् 1930 से 1975 तक की समयावधि को सराईकेला छउ नृत्य का स्वर्णिम काल भी कहा जा सकता है.

छउ नृत्य शैलिया:- मुखौटा, रंग -बिरंगी पोशाकों, आभूषणों व रंग- लेपों तथा विविध साज-सज्जा के आधार पर छउ नृत्य शैली के तीन स्वरूप पाए जाते हैं[4] -

1. पहला- झारखंड राज्य के सरायकेला क्षेत्र का सराईकेला छउ नृत्य.
2. दूसरा- पश्चिम बंगाल राज्य के पुरुलिया क्षेत्र का पुरुलिया छउ नृत्य.
3. तीसरा- उड़ीसा के बारिपदा (मयूरभंज) क्षेत्र का मयूरभंज छउ नृत्य.

छउ का स्वरूप:- छउ का सबसे प्रारंभिक स्वरूप सराईकेला छउ को माना जाता है.[5] जिससे बाद में मयूरभंज व पुरुलिया छउ का विकास हुआ. इनमें सराईकेला व पुरुलिया छउ मुखौटा का प्रयोग करते हैं जबकि मयूरभंज मुखौटा रहित है.

सरायकेला क्षेत्र की भूगौलिक परिस्थिति:- सरायकेला झारखंड के दक्षिणी भाग में खरकाई नदी के तट पर स्थित है. इसकी स्थापना सन् 1620 ई. में राजा विक्रम सिंह द्वारा की गई थी. आजादी के पश्चात जब इसका विलय बिहार राज्य में किया गया तो इसे अनुमंडल का दर्जा दिया गया. सन् 2000 में जब झारखंड राज्य देश का 28वाँ राज्य बना तो सरायकेला-खरसावां को इस राज्य के दक्षिण में स्थित पश्चिमी सिंहभूम से अलग कर झारखंड राज्य का 24वां जिला बनाया गया. भौगोलिक स्थिति के अनुसार सरायकेला भारत के झारखंड, बिहार, पश्चिम-बंगाल, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ तथा झारखंड की सीमा से लगे हुए उत्तर-प्रदेश के कुछ भागों को स्पर्श करता है. अतः सराईकेला छउ भी इन्हीं भागों में प्रचलित नृत्य शैली के रुप में जाना जाता हैं.

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:-

इसके ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाले तो छउ नृत्य का जो वर्तमान स्वरूप दिखाई देता है उसको प्राप्त होने में सदियों लगे हैं. जिसने बदलते समय के साथ परत दर परत स्वयं को संजोए हुए अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त किया है. विद्वानों के मतानुसार कलिंग क्षेत्र में पङने वाले वर्तमान झारखंड राज्य का सिंहभूम व सरायकेला तथा इसके आसपास के क्षेत्र जैसे पश्चिम बंगाल का पुरुलिया और उड़ीसा का बारिपदा (मयूरभंज) इस साम्राज्य के ही अंग थे, जो सम्राट अशोक के कोप भाजन अर्थात भीषण रक्तपात का शिकार हुए थे. अतः इस भीषण रक्तपात से सबक लेकर परवर्ती राजाओं ने अपने साम्राज्य अर्थात जनता की सुरक्षा की दृष्टि से गांव-गांव में सरकारी पाईको अर्थात पैदल सैनिकों द्वारा युद्धाभ्यास कराया. जनता को नृत्य-कला के मनोरंजन के माध्यम से तलवार व ढाल की कला में निपुण बनाने का प्रयास किया गया. तलवार व ढाल की यही विद्या आगे चलकर फरिखंडा-कला के नाम

[4] छउ नृत्य कला, बदरी प्रसाद, पृ.सं. 1

[5] छउ नृत्य कला, बदरी प्रसाद, पृ.सं. 20

से जानी गई. इसे परिखंडा-कला भी कहते हैं. जहां "परि" का अर्थ ढाल तथा "खंडा" का अर्थ तलवार होता है. बाद में यही युद्ध विधा छउ नृत्य के रूप में अलग-अलग क्षेत्रों में प्रचलित हो गई. पैदल सैनिकों अर्थात पाईको के इस परिखंडा खेल में सामान्य जन भी सहर्ष अपनी प्रतिभागिता दिखाने लगे. सिपाहियों द्वारा इस खेल के प्रति लोगों को आकर्षित करने के लिए तलवार-ढाल के बिना ही केवल अंगों के संचालन व भाव भंगिमा के प्रदर्शन को देख कर स्थानीय लोगों में भी इस युद्ध-नृत्य को सीखने की ललक धीरे-धीरे बढ़ने लगी. पैदल सैनिक अपने शत्रुओं को चकमा देने अर्थात भ्रमित करने के लिए जंगली जानवरों के समान पोशाक तथा मुखौटा धारण करते थे. जिसकी नकल युद्ध-नृत्य अर्थात छउ-नृत्य में भी होने लगी. नर्तकों की ये पोशाक साधारण जन को अपनी ओर आकृष्ट करने लगी तथा यह कला मनोरंजन का एक सशक्त माध्यम बन गया. कालांतर में राजघरानों के संपर्क में आने के बाद इसमें कलात्मक आयामों का समावेश होने के साथ-साथ बहुमुखी विकास भी होने लगा. सरायकेला राज्य के अंतिम शासक आदित्य प्रताप सिंहदेव के छोटे भाई कुमार विजय प्रताप सिंहदेव को छउ नृत्य का आधुनिक सर्जक माना जाता है. कुमार विजय प्रताप को शुरू से ही कला के प्रति अति रुझान था. अपनी पढ़ाई पूरी करने के पश्चात जब कुमार सरायकेला वापस लौटे तो उनका मन इस कला के प्रति आकृष्ट हुआ और उन्होनें छउ नृत्य की बारीकियों को आत्मसात करना शुरू कर दिया. इसी बीच उन्होंने नृत्य से संबंधित फरिखंडा-कला के आठ अखाड़ों को मान्यता दी तथा इस नृत्य में कलात्मकता व शास्त्रीयता के रंगों को भरना शुरू कर दिया. कुमार साहब ने आठों अखाड़ों के गुरुओं के साथ बैठकर इस नृत्य के विभिन्न बिंदुओं पर गहनता से विचार-विमर्श कर इसमें धार्मिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक और श्रृंगारिकता का समावेश किया. सराईकेला नृत्य के प्रस्तुतीकरण की अनेक कथाओं का चयन कर उन्हें संस्कृत के श्लोकों में बांधा तथा पहले से प्रचलित उड़िया गीतों को सुर-लय-ताल की निश्चित सीमा में बांधकर प्रस्तुतीकरण का नया आयाम बनाया. इस प्रकार सरायकेला नृत्य के बिखरे स्वरूप को कलात्मक ढांचे में बांधने तथा लोक से शास्त्रीयता की ओर उन्मुख करने का प्रथम प्रयास किया गया. अत: सराईकेला छउ नृत्य ने राजघराने से जुड़ने के बाद अपनी सच्ची अर्थवत्ता प्राप्त की. आचार्य विजय प्रताप सिंह देव द्वारा उत्प्रेरित इस नृत्य की प्रगाढ़ प्रशंसा न केवल भारत में हुई अपितु सन् 1937-38 के बीच यूरोपीय देशों जैसे- इंग्लैंड, इटली, रोम और फ्रांस में भी इसकी सराहना की गई. उस समय छउ नृत्य को प्रचलित करने में समकालीन अनेक गुरुओं ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया. जैसे- वनबिहारी पटनायक, सुश्री वाणी मजूमदार, ताले दारोगा, गुरु केदारनाथ साहू, शुभेंद्र नारायण सिंहदेव, चित्तरंजन पटनायक आदि. वर्तमान समय में भी अनेक गुरु इस नृत्य के प्रचार प्रसार में अपना सहयोग दे रहे हैं जैसे: रंजन कुमार पटनायक, ब्रजेंद्र कुमार पटनायक, शशधर आचार्य, तपन कुमार पटनायक, विजय कुमार साहू आदि. छउ नृत्य में नर्तन भेदों (नाट्य, नृत्त और नृत्य तीनों) का अद्भुत सम्मिश्रण देखने को मिलता है. यदि हम देखें तो छउ नृत्य के व्यापक आधार तत्त्व अर्थात इसके मुखौटे या प्रतिशीर्ष निर्माण की प्रक्रिया, रंग-लेपन, चरित्रानुकूल वेश-भूषा, तांडव-नृत्य के लक्षण, पाद-चारी, हस्त-मुद्रा, मूकाभिनय और वाद्य-यंत्रों के आकार-प्रकार तथा सांगीतिक संरचना के सिद्धांतों का निरूपण, आचार्य भरत कृत नाट्यशास्त्र में वर्णित नृत्य के शास्त्रीय पक्षों- आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक से साम्यता रखते हैं जो सराईकेला छउ की समृद्ध परंपरा का द्योतक है.

नाट्यशास्त्र के तत्त्वों में छउ नृत्य के तत्त्वों का प्राप्त होना-

श्रृंगार, वेशभूषा एवं अन्य रंगमंचीय उपकरणों का प्रयोग आहार्य अभिनय कहलाता है. नाट्यशास्त्र के 23वें अध्याय में भरत मुनि ने आहार्याभिनय को चार भागों में विभक्त किया है[6]:-

1. पुस्त (सांकेतिक पदार्थों की रचना): इसमें रंगमंच पर शैल, रथ, विमान, पर्वत, हाथी आदि को वस्त्र, चर्म से निर्मित कर सांकेतिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है. पुस्त तीन प्रकार का होता है-

- संधिम (वस्तुओं को परस्पर जोडकर रंगोपयोगी बनाना)
- व्याजिम (यांत्रिक साधनों के द्वारा भौतिक पदार्थों का रंगमंञ्चपर प्रस्तुतीकरण)
- वेस्टिम (किसी वस्तु के स्वरुप को वस्त्र आदि में लपेट कर प्रयोग करना)

2. अलंकार: इसके अंतर्गत शरीर सज्जा के लिए पुष्पमाला, आभूषण, वस्त्र आदि का अनेक प्रकार से समायोजन किया जाता है. अलंकार के तीन प्रकार हैं-

- माल्यधारण-माला के द्वारा शरीर का प्रसाधन (वेष्टित, वितत, संघात्य, ग्रन्थित और प्रलम्बित)
- आभूषण-परिधान- आभूषणों के द्वारा शरीर का प्रसाधन (आवेध्य, बन्धनीय, प्रक्षेप्य और आरोप्य)
- वेश-विन्यास

3. अङ्गरचना: इसके अंतर्गत वर्णविधि, श्मश्रुकर्म, वेश-विन्यास, केश-सज्जा आदि का देश, जाति, अवस्था के अनुसार निरूपण किया जाता है अर्थात् पात्रों के अंगों को विविध रंगों से रंगना. चार स्वाभाविक वर्ण इस प्रकार हैं-

- सित(श्वेत)
- पीत
- नील
- रक्त

4. संजीव: रंगमंच पर अपद, द्विपद और चतुष्पद जीव-जंतुओं जैसे- सर्प, सिन्ह, व्याघ्र, देव-दानव आदि की 'पटी' या 'प्रतिशीर्ष' या 'मुखौटे' को प्रस्तुत करने की विधि "संजीव" कहलाती है.

सरायकेला छउ के लिए अनिवार्य एवं अपरिहार्य तत्व है उसका मुखौटा. जो सौंदर्य एवं सौम्यता का प्रतीक है और जिस पर पूरे नृत्य की तकनीक निर्भर करती है. मुखौटे के कारण इस नृत्य में छवि या प्रतिकृति का महत्व भी बढ़ जाता हैं. दक्षिण भारतीय नृत्य कला शैलियों जैसे कथकली, मोहिनीअट्टम तथा यक्षगान में शरीर व मुख की विभिन्न भंगिमाओं द्वारा कथावस्तु को उजागर किया जाता है जबकि सराईकेला छउ नृत्य में चेहरे को मुखौटे से ढक कर केवल आंगिक अभिनय द्वारा कथावस्तु को सजीव बनाया जाता है जो इस नृत्य की सबसे बड़ी विशेषता है. चेहरे पर मुखौटा होने से मुख भाव का कोई महत्व नहीं रह जाता है अतः इस स्थिर भाव में भाव भरने के लिए

[6] नाट्यशास्त्र में आंगिक अभिनय, डॉ. भारतेन्दु द्विवेदी, पृ.सं. 33

कलाकार या नर्तक द्वारा सुंदर हस्त मुद्राओं का संचालन तथा विभिन्न शारीरिक भंगिमाओं को तालों के अनुरूप संचालित किया जाता है जो अत्यंत ही रोचक लगता है. इसमें संचारी भाव की अभिव्यक्ति अंगिकाभिनय, शिरो-भेद, ग्रीवा-भेद आदि के द्वारा किया जाता है. चेहरे के समस्त भाव छउ नर्तक के हाथों और पैरों के साथ-साथ गतिमान शरीर में संचारित हो जाते हैं जिससे दर्शक नृत्य की कथावस्तु की पूरी श्रृंखला से स्वयं को जुड़ा हुआ पाते हैं और दोनो के बीच एक संप्रेषण स्थापित हो जाता है. सराईकेला छउ नृत्य की किसी भी कथावस्तु में अभिनेय चरित्र की विशिष्टता मुखौटों पर ही संकेन्द्रित होती है. मुखौटा धारक नर्तक का चेहरा तो ढका रहता है किंतु नृत्यमय शरीर अपनी भाषा में वार्तालाप जारी रखता है और इस तरह मुखौटा धारक नर्तक और दर्शकों के बीच प्रभावित करने वाली क्रिया निरंतर चलती रहती है.

मुखौटे का निर्माणः- इस मुखौटे या प्रतिशीर्ष का निर्माण नाट्यशास्त्रीय आहार्याभिनय के चौथे तत्त्व "संजीव" के लिए वर्णित नियमों के अनुसार ही किया जाता है. साथ ही वस्त्रालंकारा जैसे मुकुट-आभूषण आदि साज-सज्जा भी अलंकार, अंगरचना आदि में वर्णित विधियों के अनुसार किए जाते हैं जो सरायकेला छउ के शास्त्रानुबद्ध होने को प्रमाणित करते हैं. यह मुखौटे प्रायः कागज, मिट्टी, प्लास्टिक और बॉस या लकड़ी से बनाए जाते हैं. सरायकेला छउ के प्रारंम्भिक समय में मुखौटों को रंगने के लिए खरकाई नदी में मिलने वाले पत्थर को रंगों के रुप में प्रयोग किया जाता था. परंतु आजकल बाजार में उपलब्ध रंगों का प्रयोग होता है. मुखौटों के निर्माण में चरित्र के मूल तत्त्व को उजागर करने की चेष्टा की जाती है. जैसे-'रात्रि' के मुखौटे में नींद भरी झुकती हुई आखें, 'बाणबिद्ध' के मुखौटे में दर्द भरी भौहें, 'शिव' के मुखौटे में त्रिनेत्र होगा आदि. इनके रंगों और चेहरे की रेखाओं, नेत्र, मुख आदि की बनावट पर कलात्मकता की छाप रहती है. इनमें बाघ, चीता, वानर आदि पशुओं, देवी-देवताओं व विभिन्न चरित्रों के मुखौटे कथावस्तु के अनुसार तैयार किए जाते हैं. ऐसा आवश्यक नहीं है कि पूरी कथावस्तु में मुखौटे पर एक ही भाव परिलक्षित हो. छउ नर्तक अपने शारीरिक संचालन तथा मुखौटे को कोणात्मक दिशा देकर एक ही मुखौटे से एक से अधिक भाव को उजागर कर देता है. मुखौटे के अलग-अलग रंग पात्रों की विविध स्थिति एवं भाव को स्पष्ट करते हैं जैसे-

- कृष्ण का मुखौटा गाढें नीले रंग का,
- दुर्गा का सुनहरा,
- शिव का उजला,
- गणेश का लाल,
- पार्वती का हल्का गुलाबी और
- एकलव्य का मुखौटा भूरा होता है.

साथ ही प्रत्येक पात्र के लिए मुखौटे के निर्माण करने का सांचा भी अलग-अलग होता है. सरायकेला छउ के प्रारंभिक मुखौटे बहुत भारी होते थे क्योंकि इनमें मुखौटे के साथ मुकुट भी जुड़ा रहता था. परंतु कालांतर में सन् 1930 के बाद यह मुखौटे नर्तकों की सुविधा हेतु हल्के एवं सुविधाजनक बनाए जाने लगे तथा मुकुट व मुखौटा भी अलग-अलग बनने लगे[7].

[7] भारतीय छउ नृत्य(इतिहास, संस्कृति और कला, भाग-1), बदरी प्रसाद, पृ.सं. 166

मुकुट:- यह मुकुट भी भरतोक्त विधान के अनुसार ही बनते हैं.[8] सरायकेला छउ का मुकुट एक निश्चित दायरे में सज्जित व कलात्मक अर्थ से युक्त होता है. पुरुलिया छउ या अन्य लोकनाट्य मुकुटों की तरह भव्य एवं भड़कीला नहीं होता है. उदाहरण के लिए-

1. 'भगवान शिव' के मुकुट में अर्धचंद्र और गंगा की उज्जवल धारा व सर्प का चित्रण होता है,

2. 'हर-पार्वती' नृत्य के मुकुट में दो भाग होते हैं पहले हिस्से में अर्धचंद्र, गंगा की धारा व सर्प के चिन्ह जो शिव को तथा दूसरे आधे हिस्से में मोती से निर्मित फूलों की सज्जा जो पार्वती को दर्शाते हैं.

3. 'कृष्ण' के मुकुट में मयूर पंख का प्रयोग होता है.

4. 'रात्रि' के मुकुट में उज्जवल मोती एवं काले वस्त्र खंड का प्रयोग होता है

5. 'चन्द्रभागा' नृत्य का मुकुट सुनहरे रंग की मोतियों से जडित होता हैं. आदि अन्य मुकुटों का निर्माण भी कथावस्तु के अनुसार होता है.

वस्त्र-आभूषण:- सराईकेला छउ नृत्य के वस्त्र-आभूषण एवं अस्त्र-शस्त्र आदि ऐतिहासिक काल अर्थात फरिखंडा-काल मे ही आंशिक रुप से विकसित हो चुके थे. प्राकृतिक फूल-पत्तियों के आभूषण व कागज की फूल-मालाएं बनाई जाती थी. पशुओं को पहनाएं जाने वाले बड़े-बड़े पीतल के घुंघरुओं को नर्तक अपने कमर में बांधते थे. वर्तमान सराईकेला छउ नृत्य की तुलना में बहुत ही कम साज-सज्जा और अलंकार के साथ नर्तक नृत्य की प्रस्तुति करते थे. सन् 1930 के लगभग जब यह नृत्य राज दरबार के संपर्क में आया तो इसके अलंकार विधान को एक नया स्वरूप प्राप्त हुआ जो भरत के नाट्यशास्त्रीय आहार्य अभिनय के अनुरूप ही था. महाराजा आदित्य प्रताप सिंहदेव और कुमार विजय प्रताप सिंह देव द्वारा सराईकेला छउ का शास्त्रीयता से संबंध स्थापित करने के इस प्रयास में अनेक समकालीन आचार्यों ने भी अपना भरपूर सहयोग दिया. इनके द्वारा दिये गये इस शास्त्रीय अलंकार विधान एवं साज-सज्जा की तकनीक का आज तक निर्वहन हो रहा है. सराईकेला छउ नृत्य के प्रमुख अलंकारों में चंद्रहार, मुक्तामाला, मणिमाला कंठाभरण या कंठमाला, कंगन, बाहुटा, शंखमाला, कमरधनी आदि है. इनमें

- मुक्तामाला- प्रत्येक नृत्य में,
- चंद्रहार- 'बाणविद्ध' एवं 'राधा' में,
- कंठमाला- 'चंद्रभागा' में,
- कंगन- प्रत्येक नृत्य में,
- रंगीन मोती से बना बाहुटा- 'मयूर' नृत्य में,
- शंखमाला- 'नाविक' नृत्य में,
- छोटे शंखों से निर्मित बाहुटा- 'नाविक' नृत्य में,
- रंग-बिरंगे मोतियों से बना बाहुटा- प्रत्येक नृत्य में,
- पीतल धातु से निर्मित नाग-चिन्ह- 'हर-पार्वती' नृत्य में,

[8] वही, पृ.सं. 214

- पीतल निर्मित बिल्वमाला- 'शिव तांडव' में तथा
- रंग-बिरंगे मोतियों की माला- 'राधा कृष्ण' नृत्य में प्रस्तुत होती है.
- 'सागर' नृत्य में सफेद मोती से बनी सात लड़ियों की माला का प्रयोग होता है.

वस्त्र-विधान-

वस्त्र-विधान में प्रायः रेशमी वस्त्रों का प्रयोग किया जाता है. बनारसी जरीदार साड़ियां, मखमली कंचुकी, बख्तरबंद, शेरवानी, पोत आदि प्रमुख वस्त्र हैं.

- मोती व जरी के काम से सज्जित बख्तरबंद, वीर पुरुष चरित्रों का वस्त्र है जो महिषासुर, अस्त्रदण्ड, दुर्योधन-उरुभंग आदि में नर्तक द्वारा पहना जाता है.
- ज़रीदार सिल्क कपड़े से बनी शेरवानी भी वीर पुरुष की एक पोशाक है.
- पौराणिक चरित्रों के प्रसंग में "पोत" जो पीठ पर लटकता हुआ एक वस्त्र है, अवश्य धारण किया जाता है. जिसका रंग प्रायः हरा होता है.
- कमर पर कटिबंध भी प्रायः प्रयोग होता है.

छउ नृत्य की वर्तमान स्थितिः-

महाराजाओं के शासनकाल में जब वे स्वयं इस नृत्य का प्रदर्शन करते थे तब नर्तकों के लिए बेशकीमती आभूषणों एवं वस्त्रों का प्रयोग होता था. परंतु राजमहल की परिधि से बाहर निकलते ही छउ नृत्य का यह स्वरुप लंबे समय तक न चल सका क्योंकि इससे जुड़े कलाकार प्रायः साधारण परिवारों से संबंध रखते थे और निम्न आर्थिक स्थिति के कारण इतने महंगे वस्त्र-आभूषण का निर्वहन नहीं कर सकते थे. कितने कलाकार तो वस्तुओं के अभाव में मंच प्रदर्शन ही नहीं करते थे या कम वस्त्रों में ही प्रदर्शन करते थे जो दर्शक जन को उतना प्रभावित नहीं कर पाता है जितना कि उसका वास्तविक स्वरूप कर सकता था. कितने कलाकार तो अपनी निम्न आर्थिक स्तिथि के कारण नृत्य प्रदर्शन को छोड़कर अन्य कार्यो में संलग्न हो गये. वर्तमान में इसके ज्यादातर कलाकार इतने शिक्षित और जागरूक नहीं है कि वे सरकार द्वारा दी जा रही सुविधाओं का लाभ उठा सके. झारखंड सरकार ने सराईकेला नृत्य को बढ़ावा देने के लिए छउ नृत्य संस्थान की भी स्थापना की है, जहां पर लोग सरायकेला नृत्य की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं. भारतीय संस्कृति मंत्रालय तथा अन्य सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा इसके संरक्षण के लिए सतत् प्रयास किए जा रहे हैं. कलाकारों को राष्ट्रीय स्तर के मंच प्रदान किए जा रहे है. सराईकेला छउ नृत्य के कई प्रसिद्ध कलाकारों को भारत सरकार द्वारा पद्मश्री एवं संगीत नाटक अकादमी जैसे राष्ट्रीय पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया है. कई विदेशी कलाकार भी गुरु-शिष्य परंपरा में रहकर इस नृत्य की शिक्षा को प्राप्त कर रहे हैं. साथ ही सन् 2010 में यूनेस्को ने सरायईकेला छउ नृत्य को Intangible Cultural Heritage (अमूर्त सांस्कृतिक विरासत) की सूची में शामिल कर लिया है[9]. इस नृत्य के पारंपरिक वस्त्र को डेनमार्क के एक म्यूजियम में भी रखा गया है जो सराईकेला छउ नृत्य के विरासत की पहचान है.

निष्कर्षः- जब कलाओं को राजाश्रय प्राप्त था, तो कलाकार स्वतंत्र होकर अपनी कला का प्रदर्शन करते थे. क्योंकि उन्हें अपने जीवन यापन के लिए आवश्यक सभी वस्तुएं राजा के दरबार से उपलब्ध हो जातीं थीं. उन्हें

[9] झारखंड की सांस्कृतिक धरोहर सरायकेला छऊ, योगेन्द्र प्रसाद, पृ.सं. 9

अपने दैनिक जीवन में किसी भी वस्तु की चिंता नहीं करनी पड़ती थी. केवल अपनी कला की साधना करना था. परन्तु वर्तमान समय की स्थिति इसके विपरीत है. सराईकेला छउ के कलाकारों को जीवन यापन के लिए नृत्य छोड़कर अन्य व्यवसायों का सहारा लेना पड़ रहा है. सरकार की तरफ से उन्हें व्यक्तिगत रूप में कोई सहायता उपलब्ध नहीं है. इस कला पर निर्भर कलाकारों की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं है कि वे स्वतंत्र होकर इस कला का प्रदर्शन चारों तरफ कर सके. इसके बावजूद कितने ही कलाकार इस प्राचीन कला के संरक्षण में लगातार लगे हैं और इसे शास्त्रीय नृत्य शैलियों में स्थान दिलवाने के लिए भी हर संभव प्रयासरत् हैं. उपर्युक्त अध्ययन से यह तो सिद्ध होता है कि सराईकेला छउ में नाट्यशास्त्र के शास्त्रीय तत्त्वों का समावेश अवश्य है किन्तु इस कला का प्राचीन समय से कोई लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं होता है. अतः छउ नृत्य के गुरुओं, कलाकारों और अध्येयताओं से अनुरोध है कि वे सराईकेला का प्रमाणित लिखित शास्त्र और अधिक से अधिक स्थानों पर छपवाने और उपलब्ध करवाने पर विचार विमर्श अवश्य करें. छउ नृत्य से सम्बंधित कार्यशाला, व्याख्यानमाला एवं संगोष्ठियों का आयोजन हो. जिससे छउ का प्रचार प्रसार उच्च स्तर पर हो सके और लोग इस अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के प्रति जागरुक हो.

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. नाट्यशास्त्र, संपादक: डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, प्रकाशनः संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालयः वाराणसी, 20152.
2. नाट्यशास्त्रीय अभिनय सिद्धांत एवं प्रयोग, लेखिकाः डॉ. अर्चना अग्रवाल, प्रकाशनः संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालयः वाराणसी, 2007
3. नाट्य शास्त्र में आंगिक अभिनय, लेखकः डॉ. भारतेंदु द्विवेदी, प्रकाशनः विश्वभारती अनुसंधान परिषद ज्ञानपुरः वाराणसी, 1990
4. भारतीय छउ नृत्य (इतिहास, संस्कृति और कला, भाग-1,2), लेखकः बदरी प्रसाद, प्रकाशकः संगीत नाटक एकेडमी नई दिल्ली और डी. के. प्रिंटवर्ल्ड (प्रा.) लि. नई दिल्ली
5. झारखंड की सांस्कृतिक धरोहर सरायकेला छउ, लेखकः योगेंद्र प्रसाद, प्रकाशकः किताबघर प्रकाशन अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002, प्रथम संस्करण: 2012
6. छउ नृत्य कला, लेखकः बदरी प्रसाद, प्रकाशन विभागः सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार (फरवरी 2008)
7. जीवन्त संस्कृति का प्रतीक(छऊ)-राजेंद्र वर्मा, जनसत्ता(समाचार पत्र), दिनांक-23/06/2002
8. संगना(संगीत नाटक अकादमी की त्रैमासिक पत्रिका),अपैल-सितम्बर, 2017
9. संगना(संगीत नाटक अकादमी की त्रैमासिक पत्रिका), अंक 34-35
10. जनसत्ता(समाचार पत्र), दिनांक-06/06/1985

छउ नृत्य में प्रयुक्त मुखौटे: